कबीर की रचनाओं में सामाजिक चेतना

रूबी त्रिपाठी
एम.ए. हिन्दी
यू.जी.सी. नेट, पता- कैलाशपुरी,गोविन्दपुर, इलाहाबाद, उत्तर प्रदेश

कबीर के आविर्भाव से पूर्व उत्तर भारत में अनेक धार्मिक साधनाएं प्रचलन में थीं। सर्वाधिक प्रभाव नाथपंथी योगियों का था। दक्षिण में उमड़ कर वैष्णव भक्ति–धारा उत्तर भारत में प्रवाहित हो चुकी थी। कट्टर एकेश्वरवादी इस्लाम निम्नवर्गीय जनता को राजनैतिक और सामाजिक कारणों से प्रभावित कर रहा था। सूफी साधक अपनी उदारता और सात्विकता के कारण भारतीय जनमानस के निकट आ गए थे। शैव और शाक्त मतों का भी प्रचार हो रहा था, पर उसकी गतिमयता समाप्त हो चुकी थी। विशेषकर शाक्त (शक्ति के उपासक) साधना तांत्रिक पद्धति को स्वीकार करने के कारण गुह्य हो गयी थी। उनके अतिरिक्त अनेक प्रकार के तपस्वी और साधक अपने–अपने रंग में मस्त थे और विविध साधनाओं में लीन कबीर विलक्षण प्रतिभा को लेकर उत्पन्न हुए। ''युगावतारी शक्ति और विश्वास लेकर पैदा हुए थे और युग प्रवर्तक की दृढ़ता उनमें वर्तमान थी, इसीलिए वे युग–प्रवर्तन कर सके थे।''[1]

दो धार्मिक आन्दोलनों की चर्चा आवश्यक है। एक धारा पश्चिम से आई यह सूफी साधना में विश्वास करती थी। मजहबी मुसलमान हिन्दू धर्म के मर्म पर चोट नहीं कर पाए थे। उन्होंने उनके वाह्य शरीर मात्र को विक्षुब्ध किया था, परन्तु सूफी भारतीय साधना के अविरोधी थे। उनका उदारतापूर्ण प्रेम व्यवहार भारतीय जनता का दिल जीत रहा था। फिर भी ये आचार प्रधान भारतीय समाज को आकृष्ट नहीं कर सके। उनका तालमेल आचार प्रधान हिन्दू धर्म साथ नहीं हो पाया बौद्ध संघ के अनुकरण पर प्रतिष्ठित विपुल वैराग्य के भार को न सूफी मतवाद और न योगमार्गीय निर्गुण परम तत्व की साधना ही वहन कर सकी। देश में पहली बार वर्णाश्रम व्यवस्था को एक अननुभूतपूर्व विकट परिस्थिति का सामना करना पड़ा।[2] अब तक वर्ण व्यवस्था का कोई विरोधी नहीं था। कोई प्रतिद्वन्द्वी नहीं था। आचारभ्रष्ट व्यक्ति समाज से बहिष्कृत कर दिया जाता था और वे एक नई जाति की रचना कर लेते थे। फिर उसके सामने एक जबर्दस्त प्रतिद्वन्द्वी आया, जो प्रत्येक जाति और व्यक्ति को अंगीकार करने को तैयार था परन्तु उसकी एक शर्त थी कि वह उसके विशेष प्रकार के धर्ममत को स्वीकार कर ले। समाज से दंडित व्यक्ति वहां शरण पा सकता था। उसकी इच्छा मात्र से उसे एक सुसंघटित समाज का आश्रय मिल सकता था ऐसे ही समय में दक्षिण से वेदान्त प्रभावित भक्ति का आगमन हुआ, जो इस विशाल भारतीय महाद्वीप के इस छोर से उस छोर तक फैल गया।[3] आचार्य

हजारी प्रसाद द्विवेदी का मानना है–''इसने दो रूपों मे आत्म प्रकाश किया। पौराणिक अवतारों का केन्द्र सगुण उपासना के रूप में और निर्गुण परब्रह्म जो योगियों का ध्येय था, उसे केन्द्र करके निर्गुण प्रेमभक्ति की साधना के रूप में। पहली साधना ने हिन्दू जाति की वाह्याचार की शुष्कता को आंतरिक प्रेम से सींच कर रसमय बनाया और दूसरी साधना ने वाह्याचार की शुष्कता को ही दूर करने का प्रयत्न किया। एक ने समझौता किया, दूसरी ने विद्रोह का, एक ने शास्त्र का सहारा लिया, दूसरी ने अनुभव का। एक ने श्रद्धा का पथ प्रदर्शक माना, दूसरी ने ज्ञान को। एक ने सगुण भगवान को अपनाया दूसरी ने निर्गुण भगवान को। पर प्रेम दोनों का ही मार्ग था, सूखा ज्ञान दोनों को अप्रिय था, केवल वाह्याचार दोनों को सम्मत नहीं थे, आंतरिक प्रेम–निवेदन दोनों को अभीष्ट था, अहैतुक भक्ति दोनों को काम्य थी, बिना शर्त के भगवान के प्रति आत्म–समर्पण दोनों के प्रिय साधन थे।इन बातों में दोनों एक थे। एक प्रधान भेद यह था कि सगुण भाव से भजन करने वाले भक्त भगवान को दूर से देखने में रस पाते रहे, जबकि निर्गुण भाव से भजन करने वाले भक्त अपने आप में रमे हुए भगवान को ही परम काम्य मानते थे।[4] स्पष्ट है कि विद्रोह, अनुभव[5], ज्ञान निर्गुण का रास्ता अपनाने वाले कबीर थे। परन्तु प्रेम तत्व दोनों मे समान था। तुलसी के राम प्रेम के प्यारे हैं। उन्हें जानना हो तो प्रेम कीजिए।[6] कबीर प्रेम मार्ग के सच्चे पथिक हैं।[7] वे उस हृदय को श्मशान मानते हैं जहां प्रेम नहीं है। विरह नहीं है।[8] तत्त्वतः प्रेम ही वही अमृत है, जो सबको मिलाता है। जोड़ता है। एक करता है। चरित्र को निर्मल–पावन बनाता है।

समाज में अव्यवस्था साम्प्रदायिकता, भेद–भाव, विषमता, स्वार्थ आदि का कारण है प्रेम का अभाव। जो प्रेम करेगा, वह उदात्त होगा। उसका चरित निर्मल होगा वहां भेद न रहेगा। अभेद दृष्टि का सम्यक् विकास होगा। इसलिए कबीर ने प्रेम पर बल दिया। प्रेम के लिए शर्त रखी आत्मबलिदान।[9] अहंकार का त्याग। जब तक अहंकार है प्रेम नहीं मिल सकता, भेद बुद्धि बनी रहेगी। इसलिए कबीर अहं को इदं में मिलाने की बात करते हैं। मान एवं प्रेम को साथ–साथ चलते देखना असंभव है, जैसे एक म्यान में दो तलवार का होना।[10] भक्ति प्रेम से ही मिल सकती है। प्रेम हो तो हृदय शुद्ध हो जाता है। वहां कोई विकार नहीं रहता। वह ऐसा पात्र बन जाता है, जहां परमात्मा की प्रतीति हो। भक्ति के आदर्श की द्विधाहीन भाषा में घोषणा करते हुए कबीर प्रेम के बिना भक्ति को ''उदरपूर्ति का कारण, व्यर्थ जन्म गंवाना और दंभ विचार कहते हैं।

ज्ञान सब मिलाकर हमारी अल्पज्ञता को ही व्यक्त करता है। परन्तु प्रेम सम्पूर्ण त्रुटियों को भर देता है। पुत्र कितना ही त्रुटियों से भरा हो पर माता कुमाता नहीं हो सकती वह प्रेम से उनकी सारी त्रुटियों को हर लेती है। प्रेमी सम्पूर्ण अभावों को अपने प्रेम से भर देता है– **''जो मिलिए संग साजन तौ धारक नरक हूं की न।''** नरक स्वर्ग का अभाव है। प्रकार का अभाव अंधकार है। दुःख सुख का अभाव मात्र है। अभाव दूर करने का एक मात्र ब्रह्मास्त्र है प्रेम। दरिद्रता, पीड़ा, अभाव सब एक ही शब्द के पर्याय हैं और सम्पूर्ण

अभावों को दूर करने की शक्ति प्रेम में है। प्रेम–भाव की कमी ही अभाव है। प्रेम आ जाए, सब पूर्ण है। इसलिए कबीर की समाज–सापेक्षता और उनकी सामाजिक चेतना का स्पष्ट प्रमाण इससे मिलता है कि वे समाज की पीड़ा को जानते थे। उनकी शक्ति सीमा को पहचानते थे और एक मात्र रामबाण प्रेम को ही मानते थे।

कबीर ने अनेक बार इस तथ्य की पुष्टि की है कि इस्लाम का खुदा भी निराकार है और भारतीय चिंतन का सार निरपेक्ष सत्ता भी निराकार है। परन्तु जिज्ञासा की जितनी, तुष्टि, तर्क की कसौटी पर खरी हिन्दू धर्म की परम सत्ता उतरती है, उतना इस्लाम का खुदा नहीं।

कबीर का मूल उद्देश्य भारत राष्ट्र की रक्षा था। कारण भारतीय राष्ट्रीयता हिन्दुत्व में निहित है और साथ ही साथ उन्हे हिन्दू धर्म की संकीर्णताओं का भी निराकरण करना था। लोगों को धर्म परिवर्तन से रोकना भी था। वे सत्संग से इस निष्कर्ष पर पहुंचे थे कि परम सत्ता प्राप्ति के लिए संसार का कोई धर्म प्रार्थना और कर्मकाण्ड के अलावा किसी दूसरे मार्ग की चर्चा नहीं करता। कर्म करते हुए विश्राम के क्षणों में कही भी ध्यान और योग में विरत होने की स्वतंत्रता एकमात्र हिन्दू दर्शन में ही उपलब्ध है।

कबीर आजीवन सम्प्रदायवाद, बाह्याचार और वाह्य भेदभाव पर कठोरतम आघात करते रहे। सुन्नत, बांग और कुरबानी हो या हिंदूमत के तीर्थ, बलिदान, व्रत। उन्होंने कभी खंडन के लिए खंडन नहीं किया। उनका केन्द्रीय तत्व भक्ति था।

सामाजिक वही है जो सहृदय है जो संवेदन ग्रहण कर सकता है। भक्त से बढ़ कर कोई सामाजिक नहीं हो पाता। उससे बढ़कर किसी में, पराई पीर की पहचान नहीं हो सकती। जब वह चराचर जगत में अपने ही प्रभु का प्रतिबिम्ब देखता है तो सारा भेद मिट जाता है।[11]

समाज के पतन का कारण है चरित्र पतन। चरित्र रहे तो सामाजिक मूल्यों की रक्षा की जा सके। समाज को गिरने–टूटने से बचाया जा सके। उनके युग में समाजवाद नहीं था। पर नीति न्याय–धर्म की मर्यादा थी। आज खुलेआम धर्म का स्थान अन्याय–अनीति ने ले लिया है। आज समाजवाद का आधार न धर्म है, न नैतिकता और न है पूरे समाज की उन्नति। परन्तु कबीर की भक्ति का सीधा सम्बन्ध चरित्र–पालन से है। चरित्रहीन व्यक्ति ही समाज का शोषण करता है। गीता के अनुसार समाज का सच्चा सेवक वही हो सकता है, जिसने मन पर अधिकार कर लिया है, कामनाओं से मुक्त हो गया है।

कबीर का सिद्धांत है– मनुष्य ईश्वर की शरण जाय, सद्विचारों के लिए, आत्मबल के लिए, अभेद मार्ग पर चलने के लिए, क्रोध–लोभ से बचने के लिए जब मनुष्य जीव–जीव के बीच में भेद न मानेगा, तब वह कैसे किसी के साथ विश्वासघात कर सकता है? कैसे किसी को धोखा दे सकता है? किसी का गला काट सकता है? समाज को ऊपर उठाने के लिए इसी चरित्र और अभेद बुद्धि की आवश्यकता है।

कबीर को समाज सुधारक कहना उनके साथ अन्याय होगा। वे मूलतः आध्यात्मिक चेतना से सम्पन्न थे। जो आध्यात्मिक है, वह मानव–मुक्ति का प्रयासी है। इसी से मानवता का पथ आलोकित होता है। समाज को सही दिशा मिलती है।

डॉ. राम चन्द्र तिवारी कबीर के मानवतावाद, सामाजिक चेतना पर सटीक टिप्पणी करते हैं – ''कबीरदास के भेद–भाव की समस्त सीमाओं को तोड़ कर जिस आदर्श मानव को सामने रखा है वह मानव व्यक्तित्व के विकास की सम्पूर्ण संभावना को समाप्त करके उसे ईश्वर तक पहुंचा देने वाला है। नर का नारायणत्व प्राप्त कर लेना ही सच्चा धर्म है।13

कबीर आत्म विकास, प्रभु–सानिध्य, प्रभु प्राप्ति के द्वारा सामाजिक चेतना को गति देने वाले हैं। व्यक्ति का विकास हो, समाज का विकास स्वयं होगा। कबीर अपने आचरण से समाज को सही मार्ग पर लाना चाहते हैं। यदि उनकी पुकार कोई नहीं सुनता तो वह अकेले ही प्रयाण करते। जो सुधरना नहीं चाहता, उसे सुधारने का प्रयत्न व्यर्थ है। वे अपने उपदेश 'साधो' भाई को देते हैं। यदि उनकी बात सुनने वाला कोई न मिलता तो वे निश्चित होकर स्वयं ही पुकार कर कह उठते–'अपनी राह तू चले कबीरा। अपनी राह अर्थात धर्म, सम्प्रदाय, जाति, कुल, और शास्त्र की रूढ़ियों से जो बद्ध नहीं है, जो अपने अनुभव के द्वारा प्रत्यक्षीकृत है ऐसा संत, मस्तमौला, खरा कहने वाला कबीर ही हो सकता है जो समाज को गंतव्य तक ले जा सकता है।

संदर्भ :

1. द्विवेदी हजारी प्रसाद : कबीर, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, तृतीय संस्करण, 1976, पृष्ठ 176–77
2. उपरिवत, पृष्ठ 182–83
3. द्विवेदी हजारी प्रसाद : कबीर, पृष्ठ 183
4. उपरिवत् पृष्ठ 183
5. तू कहता कागद की लेखी, मैं कहता आंखियन देखी। – कबीर बचनावली।
6. रामहिं केवल प्रेम पियारा। जानि लेहु जेहि जाननिहारा।। रामचरितमानस
7. मिलना कठिन है, कैसे मिलोगी प्रिय जाय। समुझि–समुझि पग धरौं जतन से, बार–बार डिगि जाय।
   सं. हरिऔध, कबीर बचनावली।
8. जा घर विरह न संचरै, सा घर जान समान।–कबीर बचनावली।
9. राजा परजा जेहि रुचै शीश देई ले जाये।–कबीर बचनावली।
10. पीया चाहे प्रेम रस, राखा चाहे मान।
    एक मयान में दो खड़ग, देखा सुना न कान।। कबीर बचनावली।

11. कबीर, पृष्ठ, 144–45

12. डॉ. तिवारी, रामचन्द्र : कबीर मीमांसा, पृष्ठ 140

****